



उत्तराखण्ड राज्य के जौनसार क्षेत्र का लोकसाहित्य, लोककथाओं, लोकगाथाओं एवं लोकगीतों का अध्ययन

रीता शर्मा ¹, डॉ० शुभा मटियानी ²

हिंदी विभाग, डी० एस० बी० परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

DOI: <https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.4.12252>

सारांश

इस शोध पत्र में जौनसार क्षेत्र के लोकसाहित्य, लोककथाओं, लोकगाथाओं एवं लोकगीतों का अध्ययन किया गया है। लोक साहित्य की परम्परा उतनी ही प्राचीन मानी जा सकती है, जितनी मानव जाति की है। जन संस्कृति का जैसा सच्चा तथा संजीव चित्रण लोक साहित्य में उपलब्ध होता है वैसा अन्यत्र नहीं मिलता है। सरलता, स्वभाविकता और सरसता के कारण यह अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। लोक साहित्य लोक जीवन का सजीव अनगढ़ और अत्यन्त प्राचीनतम माध्यम है जिसमें लोक और जीवन में साहित्य का तादात्म्य सम्भव होता है। लोक साहित्य की अर्थगत व्याप्ति अत्यन्त विस्तृत है। यह किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं होता। इसके पीछे परम्परा वर्तमान रहती है। जिसका सम्बन्ध समाज से है। इसकी अभिव्यक्ति सामूहिक होती है वे सारी मौखिक अभिव्यक्ति जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के कटघरे के बाहर की हैं, तथा जो समान रूप से समाज के आत्मा को व्यक्त करने की क्षमता रखती हैं, लोक साहित्य की श्रेणी में आती है। हिन्दी साहित्य और वाङ्मय के सर्वांगीण विकास और समृद्धि में लोक साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य की सतत प्रवाहमान धारा में लोक साहित्य की अनेकानेक धारायें मिलकर उसे सार्वजनिक और मंगलकारी बनाने का उपक्रम प्रारम्भ से ही करती आ रही है और यह उपक्रम अविच्छिन्न रूप से चलता रहेगा। हिन्दी समिति उत्तर प्रदेश शासन ने हिन्दी साहित्य के उन्नयन के लिए अब तक ज्ञान-विज्ञान के अनेकानेक प्रकाशन करके हिन्दी जगत को समर्पित किये हैं, और साथ ही विभिन्न प्रादेशिक लोक साहित्य यथा राजस्थानी, महाराष्ट्र लोक साहित्य, बुन्देलखण्डी, लोक साहित्य, गढ़वाली लोक साहित्य, हिमाचली, लोक साहित्य, कश्मीरी लोक साहित्य, कुमाऊँनी, बंगला लोक साहित्य, तेलुगु लोक साहित्य आदि अनेक भाषाओं के अपने लोक साहित्य की पुस्तकें प्रकाशित की हैं। जौनसार क्षेत्र लोकसाहित्य, लोककथाओं, लोकगाथाओं एवं लोकगीतोंसे सम्पन्न है जिसके संरक्षण की आवश्यकता है।

मूल शब्द: जौनसार क्षेत्र, लोकसाहित्य, लोककथाएँ, लोकगाथाएँ

प्रस्तावना

जौनसार क्षेत्र के लोकसाहित्य का सामान्य परिचय।

अब इस तथ्य को भी दृष्टिगत रखते हुए कि हिन्दी साहित्य के उन्नयन की दिशा में किये जाने वाले प्रयास तब तक पूर्ण नहीं होंगे जब तक हिन्दी को समपुष्ट और परिपुष्ट बनाने वाले लोक साहित्य की पुस्तकों का प्रकाशन और प्रणयन न किया जाये। प्रदेश के इस जौनसारी लोक साहित्य की अपनी एक विशेषता है। 'फाउन्डेशन ऑफ लैंग्वेज में वर्णित ग्रे के अनुसार दुनियाँ में 2786 भाषाएँ बोली जाती हैं। प्रस्तुत संख्या में एक हजार से अधिक वे भाषाएँ हैं, जो अमेरिका महाद्वीप में बोली जाती हैं, तथा ये भाषाएँ आदिम जातियों में ही प्रचलित हैं। लगभग पाँच सौ भाषाएँ अफ्रीका की जातियों द्वारा बोली जाती हैं। इतनी ही भाषाएँ आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी तथा प्रशान्त महासागर के अन्य द्वीपों में प्रचलित हैं। सैकड़ों ऐसी भाषाएँ भी उसमें संग्रहित हैं जो एशिया के अनेक भागों में बोली जाती हैं।

लोक शब्द की उत्पत्ति— सिद्धान्त कौमुदी में लोक शब्द संस्कृत के लोक दर्शन धातु से घञ प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है माना गया है। इस धातु का अर्थ है देखना तथा इसका अन्य पुरुष एकवचन रूप होगा। इस प्रकार यह प्रकट हुआ कि योग शब्द का अर्थ है देखने वाला अतः जो सम्मत जन समुदाय इस कार्य को करता है। वह लोक कहलाया। ऋग्वेद में, सुप्रसिद्ध पुरुषसुक्त में लोकशब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में व्यक्त किया गया है। यथा— नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्षो द्यौः समवर्तत । पद्म्यां भूमिदिशः श्रोत्रात्तथा लोकां कलन्त्ययन ।। अर्थात् भगवान की नाभि से अन्तरिक्ष की सृष्टि हुई है, उसके मस्तिष्क से स्वर्ग की उत्पत्ति हुई है, उसके चरणों से भूमि की सृष्टि हुई है, उसके कानों से दिशाएँ उत्पन्न हुई हैं तथा सारे

लोकों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार लोक शब्द लोक दर्शन धातु से बना हुआ है, जिसका अर्थ है देखना। लोक ऐसा स्थान है जिसका बोध प्राणी को हो अथवा जिसकी उसने कल्पना की हों वेदों में लोकशब्द को आम जनता का पर्यायवाची माना है। श्रीमद् भागवद् गीता में लोक शब्द इसी अर्थ में प्राप्त होता है। यहाँ पर दृष्टव्य यह है कि उपनिषदों में दो लोक माने गये हैं—

1. इहलोक
2. परलोक

आधुनिक शब्द कोश में लोक शब्द के आठ अर्थ दिये हैं जैसे—जगत, स्थान, प्रदेश, दिशा, लोग, प्राणी, यश, समाज आदि समपाताल और समलोकों का वर्णन पुराणों में प्राप्त होता है। हिन्दी में लोक शब्द के लिए लोग जिसका अर्थ है जनसामान्य। इस प्रकार लोक साहित्य के विशिष्ट अध्ययन हेतु लोक शब्द को दो अर्थों में विस्तार हुआ है—

1. विश्व या समाज
2. सामान्य जनसाहित्य ।

वेदों से लेकर उपनिषद ग्रंथों महाभारत एवं गीता आदि में लोक शब्द प्राप्त होता है। अशोक शिलालेख में भी लोक शब्द का प्रयोग उपलब्ध हुआ है। जहाँ इस शब्द से समस्त प्रजा का भाव प्रकट होता है। वर्तमान समय में लोक शब्द की व्याख्या विविध रूपों में की गई है। युरोपीय भाषाओं में लोक शब्द का समानार्थी फोक (Folk) शब्द प्रचलित है। युरोपीय विद्वानों में सर्वप्रथम आबे ने सन 1687 में

सर्वसाधारण जनता के रीति-रिवाजों के, रहन-सहन, अर्धविश्वासों आदि के अध्ययन को प्रारम्भ किया। डब्ल्यू० जे० थामस सन 1846 में पहली बार फोकलोर शब्द का प्रयोग किया, उन्होंने इस शब्द

के सार्वजनिक पुरावृत्त (Popular antiquities) के लिए रचना की थी। आगे चलकर यह शब्द व्यापकता के कारण जाति-बोधक शब्द की तरह चल पड़ा। उनका मत है कि प्राचीन असभ्य एवं पिछड़ी जातियों के अंधविश्वास तथा उनकी प्रथाएं आदि के अविशिष्ट अंश ही आगे सभ्य कहलाने वाली जातियों में प्राप्त होती है।

अंग्रेजी में फोक (Folk) शब्द की थ्वसब से व्युत्पत्ति मानी जाती है। यह एंग्लो-सैक्सन शब्द है तथा जर्मनी में थ्वसा रूप में प्रचलित है। आंग्ल भाषा में एक ओर इसको असंस्कृत और शुद्र जाति और समाज के लिए प्रयोग किया गया है वहीं दूसरी ओर साधारण के लिए भी प्रचलित है। जिन विद्वानों ने फोक शब्द को असंस्कृत लोगों के लिए व्यवहृत किया है, उनके नाम हैं प्रोफेसर चाइल्ड, किटरेज, सिजविक, गुभेर व लूसी पौंड आदि। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में फोक का भाव आदिम जाति के उन सभी व्यक्तियों का बोधक है, जिनसे वह समुदाय बना है। यदि इस शब्द का व्यापक अर्थ ले तो यह सभ्य राष्ट्र की समग्र जनसंख्या के लिए भी प्रयोग में आ सकता है। इसका साधारण अर्थ फोकलोर (लोकवार्ता), फोक म्यूजिक (लोक संगीत) आदि संकुचित रूप में उन्हीं के लिये आता है जो नागरिक संस्कृति तथा शिक्षा के बाहर पड़ जाते हैं। जो निरक्षर हैं अथवा नव साक्षर हैं और ग्रामों एवं जनपदों में निवास करते हैं।

जर्मन विद्वानों ने इस क्षेत्र में बहुत कार्य किया है। विशेष रूप में ग्रीन बन्धुओं विल्हेल्म ग्रीन का कार्य अत्यन्त प्रशंनीय है। यद्यपि फोक सम्बन्धी उनका अर्थ भी आदिम सभ्यता के भाव को ही प्रकट करता है। हिन्दी में फोक का पर्याय ग्राम, जन तथा लोक के रूप में प्राप्त होता है। पंडित राम नरेश त्रिपाठी ने फोक शब्द के लिए ग्राम शब्द पर अत्याधिक आग्रह किया है। इसी आधार पर उन्होंने फोक साँग का हिन्दी पर्याय ग्राम गीत स्वीकार किया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि लोक शब्द अंग्रेजी के फोक का पर्याय होते हुए भी उसकी संकुचित भावना से सर्वथा मुक्त है और उसका प्राचीन रूप पूर्व से ही हमारे यहां प्राप्त होता रहा है, जिसमें संस्कृति और परिष्कृत प्रभावों से मुक्त पुरातन जीवन के दर्शन होते हैं एवं जिसका अपना निश्चित स्वरूप उपलब्ध होता है।

भारत गाँवों में बसता है गाँवों की संख्या नगरो से अधिक है फिर भी गाँवों एवं नगरों की दो पृथक ईकाईयों को एक रूप में नहीं माना जा सकता है। प्रत्येक क्षेत्र में गाँवों, नगर पर नगर, गाँवों पर आधारित है। दोनों का अटूट सम्बन्ध है। इस प्रकार लोक शब्द आदिम जाति अथवा समाज के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता है। लोक की अपनी एक परम्परा होती है और उस परम्परा के कारण लोक जीवन क्रियाशील रहता है। भारतीय लोक जीवन इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। भारतीय लोक जीवन ग्रामों एवं नगरों दोनों में ही लोक संस्कारों जैसे तीज-त्यौहार, व्रत-उपवास आदि से सम्बन्ध होकर लोक के यथार्थ रूप को प्रकट करता है।

संस्कृति की विशेषता को प्रतिपादित करते समय लोक शब्द ग्राम्य माना जाता रहा, लेकिन डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक के उक्त अर्थ से सहमत नहीं हैं। उन्होंने जनपद के प्रथम अंक में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि लोक शब्द का अर्थ ग्राम्य नहीं बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई समूची जनता है, जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं अपितु यह लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करती है।

लोक साहित्य

लोक व लोकवार्ता का स्वरूप स्पष्ट कर लेने के पश्चात लोक साहित्य पर सहजता से प्रकाश डाला जा सकता है। लोक साहित्य लोकवार्ता का ही एक अंग है। जन साधारण में वे लोक समूह सम्मिलित माने जाते हैं जो उस लोक में जीवन यापन करते हैं, इनका जो मौखिक साहित्य रहा है, उसे ही लोक साहित्य कहा जाता है। इनके ज्ञान का आधार विज्ञान नहीं, अपितु पूर्व प्रचलित परम्पराएँ और पीढ़ी दर पीढ़ी संचित ज्ञान होता है। समाज में व्याप्त विश्वास, भावनाएँ, आदर्श ही इनकी जीवनधारा का निर्धारण करते हैं। अतः बनावट से दूर हृदय की ही निश्छल सरल धारा में अवगाहन कर ये सरलता का रसपान करते हैं। लोक साहित्य के अन्तर्गत आंचल में प्रचलित जादू-टोना, तन्त्र-मंत्र, भूत-प्रेत, डोरा, ताबीज, शकुन, अपशकुन, देवी-देवता, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज छन्द कथाएँ विधि गीत संगीत, लोक नाट्य आदि।

जनसाधारण के रहन-सहन, रीति-रिवाज, भाषा बोली को वहाँ की संस्कृति कहते हैं। अतः लोक साहित्य लोक संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, परिष्कृत साहित्य के विपरीत लोक साहित्य अंचल विशेष से सम्बद्ध होता है। यह व्याकरण के नियमों से मुक्त होता है। जनभाषा के माध्यम से उनकी चिन्ता, पीड़ा, वेदना तथा हर्ष, उल्लास की ही अभिव्यक्ति लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक साहित्य के सन्दर्भ में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—जो चीजें लोकचित्त से सीधे उत्पन्न हो तथा साधारण जन को आन्दोलित करें। वो ही लोक साहित्य के नाम से पुकारी जाती हैं।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लोक साहित्य के सन्दर्भ में अपने मत इस प्रकार व्यक्त किये हैं— ऐसी मौखिक अभिव्यक्ति जो लोक की युग-युगीन वाली साधना में समाहित रहते हुए भी जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्बित रहता है, लोक साहित्य हैं, वह मौखिक अभिव्यक्ति है और सामान्य जन समूह उसे अपना मानता है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने लोक साहित्य के सन्दर्भ में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं। परम्परागत जीवन यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक आचार-विचार श्रद्धा के द्वारा अभिव्यक्त होती है। उसे ही लोक साहित्य कहा जाता है।

लोक साहित्य में विश्लेषण कृष्ण देव उपाध्याय ने लोक साहित्य के सन्दर्भ में अपना मत इस प्रकार से व्यक्त किया है— सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहज व्यवस्था में जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा हर्ष-विषाद जीवन-मरण, सुख-दुःख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होती है, उसे ही लोक साहित्य कहा जाता है।

ब्रज लोक ग्रन्थ में डॉ० कैलाश चन्द्र भाटिया ने लोक साहित्य के सन्दर्भ में लिखा है— लोक साहित्य में लोक जीवन प्रतिबिम्बित होता है, लोक जीवन की सृष्टि रूप में अभिव्यक्ति लोक साहित्य में मिलती हैं, कोई एक व्यक्ति साहित्य का न तो निर्माण कर सकता है न ही विनाश यह समस्त जीवन का प्रतिनिधित्व ही लोक साहित्य है। डॉ० सत्यागुप्त ने खड़ी बोली का लोक साहित्य ग्रन्थ में लोक साहित्य की व्याख्या इस प्रकार की है— श्लोक साहित्य मंगल विराट सौन्दर्याभिव्यक्ति हैं, जिसमें किसी भी प्रकार की विकृति नहीं आ सकती हैं, इस विराट सौन्दर्य को जो संसार में भी हर लोक मानव तथा लोक समाज की पृष्ठभूमि में समान रूप से जीवित है। यह लोक कलाओं तथा लोक संस्कृति में सम्पर्क बनाये रखने के लिए वह सेतु है, जिसके सहारे कला एवं संस्कृति विकास के लक्ष्य तक पहुँचाती है, यह एक लोक साहित्य की सम्पर्क परिभाषा है।

अब तक लोक साहित्य विभिन्न हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, विषयक परिभाषाएँ देखी हैं। इससे लोक साहित्य के कई रूप स्वरूप वैशिष्ट्य विकसित दिखायी देते हैं। विविध भाषा साहित्यकारों द्वारा लोक साहित्य विषयक विचारों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि—

1. यह उस लोक का साहित्य है जो सभ्यताओं की सीमा से बाहर है।
2. यह मौखिक परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होता है, जिसके रचयिता अज्ञात हैं।
3. लोगों के मनोरंजनार्थ लिखा गया साहित्य है।
4. इसमें लोक की युग-युगीन वाणी साधना समाहित है।
5. लोक साहित्य जनमानस का प्रतिबिम्ब है।
6. कुछ विद्वान लोक साहित्य के पर्यायवाची शब्द के रूप में ग्राम साहित्य जन-साहित्य को भी स्वीकार किया है।
7. कुछ विद्वान लोक साहित्य को जंगली जातियों का साहित्य भी मानते हैं।
8. यह कला और संस्कृति में सम्पर्क बनाये रखने का एक महत्वपूर्ण साधन या स्रोत है।
9. यह इतिहास तथा मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है।
10. लोक साहित्य का ललित शिष्ट, साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है।
11. यह सामान्य जन के हँसने रोने का संगीत है।
12. स्वाभाविकता, सरसता, एवं सरलता इसका वैशिष्ट्य है।

इस प्रकार लोक साहित्य मनुष्य की आदिम और प्राकृत भावाभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साहित्य है। इसकी शैली अलंकृत तथा गतिशील होती है, यह हमेशा काल सापेक्ष सम्पन्न साहित्य है। संक्षेप में कह सकते हैं यह बहुविध, बहुरंगी, बहुदंगी, बहुशैली, बहुजनहिताय साहित्य है।

लोक साहित्य और साहित्य में समानता: लोक साहित्य को प्रस्तुतीकरण में हर बार नया रसानुभव, स्वाद, नूतनता होती है, वैसे ही साहित्य में ये विविधाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। लोक साहित्य एवं साहित्य सदैव वर्तमान तथा ताजगीपूर्ण होता है, इन दोनों की एक दूसरे से लेन-देन चलती रहती है। अतः वे परस्पर प्रभावशाली हैं। लोक साहित्य की निर्मित प्राचीन तथा मध्यकाल में किसी व्यक्ति ने की ही होगी, बाद में सामूहिक सामुदायिक हुई होगी। अतः साहित्य निर्मित की व्यक्तिनिष्ठता लोक साहित्य में भी है। अतः दोनों में साम्य है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि संत तुलसीदास जी ने भी प्रारम्भिक काल में लोक साहित्य की ही रचना की है। बाद में वह साहित्यनिष्ठ हुई। इस प्रकार व्यवहारिकता की दृष्टि से भी लोक साहित्य एवं साहित्य में काफी घनिष्ठता है। लोक साहित्य में गेयता है तो साहित्य में भी गेयता है। लोक साहित्य में जो सामाजिक, देशीय, धार्मिक, संस्कृतिक, ऐतिहासिक, पारम्परिक विषय होते हैं। लोक साहित्य का इतिहास, मानव, विज्ञान, पुरातत्व, समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, भाषा विज्ञान तथा धर्मशास्त्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। इसी प्रकार साहित्य का भी इन विषयों से अटूट संबंध रखता है। साहित्य में जो भी निहित है, वही तत्त्व लोक साहित्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, इसलिए दोनों में परस्पर पूरक सहयोग वाला अटूट सम्बन्ध भी है। उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोक भाषा ही लोक साहित्य की जननी हैं। इसलिए लोक भाषा से ही लोक साहित्य का विकास हुआ है इस प्रकार लोक में रोना-हँसना, खान-पान, रहन-सहन आदि के संगीत को ही मन लोक साहित्य कहते हैं।

लोक-साहित्य की विविध विधाएँ

हिन्दी लोक-साहित्य के इतिहास और उसकी वर्तमान स्थिति का संक्षिप्त परिचय दे लेने के पश्चात् हम लोक-साहित्य की विभिन्न विधाओं की चर्चा करेंगे। लोक-गीत, लोक-गाथाएँ, लोक-कहानी, कहावतें, मुहावरे और पहेलियाँ लोक-साहित्य के ही तत्व हैं। मानव बड़ा संवेदनशील प्राणी है और वह संवेदना

उसकी जन्मजात है जो आदिम युग से उसमें चली आ रही है। जब कभी कोई हर्ष या विवाद की घटना घटित हो जाती है अथवा ऐसा ही कोई प्रसंग उपस्थित हो जाता है तो उसकी संवेदना के तार झंकृत हो उठते हैं और वह आवेगों को अपने में सीमित नहीं रख पाता। उसका अन्तःकरण अभिव्यक्ति के लिए आकुल हो उठता है। भाववेग के प्रथम क्षणों में तो उसकी वाणी अवरुद्ध रहती है। उस समय भाव केवल शारीरिक अनुभावों के रूप में आसुओं में हँसी में, निःश्वास अथवा खिलखिलाहट में प्रकट होते हैं। किन्तु जब वे आवेश उत्तार पर आते हैं तब भी मानव कुछ कहने को आतुर रहता है। उस समय उसके स्वर फूटते हैं। और चूंकि मानव में रागात्मक वृत्ति भी होती है, ये स्वर शब्दों की सहायता से लयवृद्ध गीतों का रूप धारण कर लेते हैं। कभी मात्र मनोरंजन के लिए ही सुखद कल्पनाएँ और कामनाएँ करते हैं और इन्हें ही गीतों में संजोते हैं। आशय यही कि भावनाओं का उद्रेक के चिरन्तन है। और मानव जाति की विराट भाव व्यंजना इन गीतों की हर कड़ी में सजीव है। अनेक सुदृताओं के बीच, अनेक अभावों में पले लोक जीवन का रचनात्मक सौन्दर्य मानों कीचड़ में उत्पन्न कमल का सौन्दर्य है। जो सहस्रों वर्षों से इन गीतों में रंग भरता चला आ रहा है। डा. शंकरलाल यादव के शब्दों में लोकसाहित्य अपने असंस्कृत रूप में आकर्षक, अपनी कच्ची अवस्था में ही मधुर और अपरी हीन स्थिति में ही उच्च तथा महान है।

ये गीता सहजात है इसीलिए इनमें किसी प्रकार की कृत्रिमता को स्थान नहीं है। जीवन के अनुभवों से ये प्रसूत हैं। अतः इनमें अनुभव की सचाई और सादगी देखी जा सकती है। और जिस इंदय में ये गीत जन्म लेते हैं। उस इंदय को कीर्ति या यश की चाह नहीं होती। गीत रचना में उसका कोई खास उद्देश्य नहीं रहता, इष्ट कोई विशिष्ट नहीं वह तो स्वतः सुखाय गाता है। इसीलिए वह उस गीत में कही अपना नाम ही लाता। वह अज्ञात रहता है और रहना चाहता है। जिस तरह वेद अपौरुषेय माने जाते हैं, उसी तरह ग्राम गीत भी अपौरुषेय है। पर जो कुछ वह गाता है, वह उसकी अनुभूति मानव मन अनुभूति है, जो समान परिस्थितियों में समान रूप से उठा करती है और मानवीय संवेदना झंकृत करती है, हरेक को बड़ी तीव्रता देती है, वही गहराई। इसीलिए वह शाश्वत हो। देश, काल और व्यक्ति की सीमाओं से वह परे है, यही कारण है कि एक की रचना होकर भी सबकी होती है, और काल-विशेष में रचित होकर भी सर्वकालिक होती है। वह व्यक्ति-गीत न होकर लोक गीत है। जनता की शाश्वत सम्पत्ति। किन्तु हम उस एक को भुला नहीं सकते क्योंकि वह व्यक्ति चिरन्तन व्यक्ति है। उसने अपने व्यक्तित्व को समष्टि से विलीन कर दिया है। लोक-गाथा एक सामाजिक संस्था है जिसकी अंतरात्मा में व्यक्ति बैठा हुआ है। उस व्यक्ति का अवहेलना हम कदापि नहीं कर सकते।

इन लोक-गीतों की रचना पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अधिक की है। इसके कारण है। एक तो प्रकृति प्रदत्त कोमल व सूक्ष्म भावनाओं का घर ही नारी है, दूसरे उसकी सामाजिक स्थिति पुरुष से भिन्न है। इन लोक गीतों की मनोभूमि में पुरुषों की तो प्रायः दो ही भावनाएँ देखी जा सकती हैं— एक तो लौकिक सुख की और दूसरे मोक्ष या पारलौकिक सुख की। वस्तुतः लोकगीतों में मानकी भावों का प्रसार इतना व्यापक रहता है कि वहाँ जड़ चेतन मानव और अमानव का भेड़ नहीं ठहर ही नहीं पाता। मानव में उसके अहं के प्रति उसके स्व के प्रति जो सहानुभूति की भावना है, वह लोक के साथ मानवेतर सृष्टि के प्रति भी उतनी ही संवेदनशील हैं।

लोक-गीतों के प्रमुख दो रूप होते हैं। एक छोटे, मुक्तक गीतों का और दूसरा उसका कथात्मक और बड़ा स्वरूप होता है। अंग्रेजी में इन्हें क्रमशः लिरिक और बालेड कहते हैं। दोनों गेय होते हैं। दोनों के स्वरूप में तो अन्तर है ही। साथ ही विषय-वस्तु

में भी अन्तर है। पहले में मानव मन की किसी भी अनुभूति को लेकर, जीवन के किसी एक अनुभव को लेकर प्रगीतात्मक रचना होती है, वह खण्ड — चित्र हैं। दूसरे में कथानक होता है। वीरता, साहस, रहस्य, रोमांच का पुट उसमें होता है। सर जार्ज ग्रियसन ने इस प्रकार के गीतों का पापुलर सांग (Popular Song) की संज्ञा दी है। पर पापुलर का अर्थ तो हुआ लोकप्रिय या प्रचलित। और लोकप्रिय या प्रचलित गीत तो अन्य भी होते हैं। अतः इन कथात्मक गीतों को बैलेड कहना ही ठीक है। बैलेड की परिभाषा प्रो० किट्रिज ने इस प्रकार दी है। बैलेड वह गीत है जिसमें एक कहानी कही जाती है। उपरोक्त विश्लेषण करने पर लोक गीतों की कुछ प्रमुख विशेषतायें हमारे सामने आती हैं। जिन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है।—

1. लोक गीतों के मूल में जातीय विशेषतायें, आदिम परम्परायें होती हैं। संस्कृति और संस्कार के चित्र उसमें मिलेंगे। मनोरजन तत्व भी रहता है।
2. उनकी परम्परा मौखिक है। उनमें जीवन्त शक्ति है।
3. रचयिता और रचनाकाल अज्ञात होता है। दूसरे शब्दों में वह लोक-संपत्ति है और सर्वकालिक है।
4. उनमें स्वाभाविकता, ऋजुता और भावों की तीव्रता होती है।
5. प्रश्नोत्तर प्रणाली, पुनरावृत्तियाँ, टेक, अतिशयोक्तियाँ और रूढ़ि संख्याओं का उल्लेख उनमें प्रायः होता है इन संख्याओं में प्रायः पाँच, सात, नौ, दस और बीस का उल्लेख अधिक आया है क्योंकि ये शुभ मानी जाती हैं।
6. लय उसका आवश्यक अंग है। संगीतात्मकता से वे युक्त होते हैं। गाने की सामूहिक प्रवृत्ति उनमें अपेक्षाकृत अधिक होती है सहज प्रवाह होता है। प्रचलित शब्दों के प्रयोग के परिणामस्वरूप स्वरों-स्वरों की सुविधा होती है। उनमें गति होती है।

लोक नृत्य

जब हम लोक गीतों की चर्चा करते हैं तब हमारा ध्यान स्वभावतः लोक नृत्य की ओर भी जाता है क्योंकि अनेक लोक गीत लोक नृत्य के साथ ही गाये जाते हैं। मनोरजन के भी वे प्रमुख साधन होते हैं। श्री सुधांशु के शब्दों में ग्राम गीत संभवतः वह जातीय आशु-कवित्व है जो कर्म या कीड़ा के ताल पर रचा गया है। गीत का उपयोग जीवन के महत्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरजन भी है। इन लोक नृत्यों की गति चंचल एवम् उदाम होती है। प्रायः ये नृत्य मण्डलाकार या पंक्तिबद्ध होते हैं। इनमें लय व ताल पर बहुत बल दिया जाता है। साथ में वाद्य भी रहते हैं। वाद्यों में भी लोक वाद्यों का ही प्रयोग होता है।

लोक कथाएँ — यद्यपि लोकगीत और लोककथा दोनों ही लोक साहित्य हैं। और दोनों की परम्परा बहुत प्राचीन है, जड़े अत्यन्त गहरी, फिर भी दोनों के स्वरूप में बहुत अन्तर है। गीत व्यक्तिकी रागात्मक वृत्ति का प्रस्फुटन है और कहानी उसके भोले कौतूहल और बौद्धिक जिज्ञासा का परिणाम। गीत अनिवार्यतः पद्य की शैली में होता है। और कहानी गद्यमय। यों कही कही कहानी की शैली चम्पू भी पायी गयी है। पर प्रायः उसका स्वरूप गद्य का ही होता है। गीत में अनुभूतियों की गहराई और तीव्रता पायी जाती है जबकि कहानी में घटनाओं का विस्तार। गीत में भावों का, रस का प्राधान्य है। कहानी में कथानक को महत्व दिया जाता है। कहानी सुनने वाले का ध्यान आगे क्या हुआ पर केन्द्रित रहता है। जबकि गीत सुनने वाला स्वयं गीत में डूब जाता है। और गायक के साथ अनायास ही गुनगुनाने लगता है। कहानी लोक—मानस की मूल भावना के रूप को स्थूल प्रतीक से अभिव्यक्त करती है। लोक कहानी का उद्भाव ही उन्हीं व्यापारों और उपादानों से हुआ है। जिनमें धर्मगाथा और लोक गाथा का।

किन्तु इन तीनों में मूलभूत अन्तर है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार मनोरजन के निमित्त कही गयी प्रचलित कहानियों के तीन रूप सम्भव हैं। धर्मगाथा लोकगाथा या अवदान स्कहमदक द्वे और लोक—कहानी उलजी द्व रु धर्मगाथा में कहानी का तत्व होता अवश्य है किन्तु उसमें धार्मिक गाथा का पाया जाना अनिवार्य तत्व है। देवी—देवताओं का उल्लेख मात्र का देने से ही कोई कहानी धर्मगाथा नहीं बन जाया करती। किसी देवी—देवता का जीवनवृत्त उसमें होता है। या फिर वे किसी प्रकार के नैसर्गिक तत्वों या ग्रहों या पूजा पाठ से सम्बन्धित होते हैं। धर्मगाथा का एक स्पष्ट उद्देश्य है। धर्मगाथा के सम्बन्ध में डा० सत्येन्द्र का कथन है कि षष्ठसे अधिक महत्त्व का तत्त्व यह है कि धर्म—गाथा के देवी—देवता का समावेश परम्परागत कथा अभिप्राय (मोटिफ) के रूप में नहीं होता वरन् धर्मगाथा संजीवित तत्व की तरह किसी देवी—देवता के वृत्त से गुंथी रहती है। इसी प्रकार अवदान भी कहानी से इस आशय में भिन्न है कि उसमें ऐतिहासिक बिन्दु को होना आवश्यक है। प्रायः यह देखने में आया है कि अनेक काल्पनिक घटनायें और व्यक्ति भी समय पाकर ऐतिहासिक मान लिये जाते हैं। लोक—कल्पना कितनी ही बार इतिहास का रूप धारण कर लेती है। लोक कथाओं के मूल में भिन्न—भिन्न विश्वास होते हैं। यद्यपि अपनी आदिम अवस्था में मानव का धर्म से कोई परिचय न था फिर भी वह विभिन्न देवी—देवताओं की पूजा—स्तुति करता था ही—कभी भय के कारण तो कभी विस्मय के, और कभी ऐसी सफलता प्राप्ति के उल्लास में जिसका कारण वह समझ नहीं पाता था और इसलिए उसे दैवी सफलता मानता था। इस सम्बन्ध में षेक्स्पियर भी लिखते हैं कि हम सब में आदिम विश्वास एक मात्रा तक वर्तमान रहते हैं इसीलिए वह सूर्य, वायु नदी आदि का मानवीकरण कर लेता है—यही जड़ है आदिम प्राकृतिक पदार्थों के मानवीकरण की। इसके बाद प्राकृतिक पदार्थों के मानवीकरण की। इसके बाद आगे चलकर हमारी कल्पना के उच्चतर स्तर पर जो प्रतिष्ठित होता है और हम जिसे अत्यन्त चाहते हैं उसमें विश्वास करने लगते हैं। यही विश्वासों एवं धार्मिक विश्वासों का आधार भूत कारण है। तो लोक कथाओं का जन्म इन्हीं विश्वासों से होता है। ज्यों—ज्यों मनुष्य की धार्मिक चेतना सम्पन्न होने लगती है त्यों—त्यों लोक कथायें धार्मिक कथायें और धर्मगाथायें बनने लगती हैं।

लोक कहानी की विशेषताएँ

लोक—कथाओं की अपनी कुछ विशेषतायें होती हैं। इसमें प्रयुक्त पात्र एवम् स्थान सभी परिचित होते हैं— जैसे राजा, रानी, राजकुमार, मित्र, मालिन, बड़ई, नाऊ, चिड़िया, कीवा, गीदड़, लोमड़ी, बकरी, बाघ इत्यादि और राजमहल, जंगल तालाब इत्यादि। हाँ, अलौकिकता का प्राधान्य और चमत्कार की प्रवृत्ति अवश्य ही इसमें होती है और इसीलिये मानव का मानवतर प्राणियों से सम्बन्ध जुड़ता है— इन कहानियों में। भारतीय और अरबी—फारसी कहानियों में प्रमुख अन्तर यही है कि यहां पशु—पक्षी और मनुष्य प्रधान पात्र होते हैं जबकि वहां राक्षस और (अप्सरायें) परियों का सेल महत्वपूर्ण होता है। साथ ही, वहां की कहानियों में प्रेम—व्यापारों का चित्रण काफी सरगर्मी के साथ और नग्न रूप में होता है जबकि भारतीय लोक कथाओं का ध्येय प्रायः आदर्शवादी है और नैतिकता पर अधिक बल देता है। सत्य की विजय, अच्छाई पर आस्था, विश्वास टिकाने का आग्रह तथा बुराई के दुष्परिणाम इन कहानियों में दिखाये जाते हैं। जातीय परम्परायें और जातिगत विशेषतायें तो इनमें सुरक्षित रही ही हैं। अंधविश्वासों का परिपालन, भाग्यवाद का समर्थन, नीति—तत्वों का समावेश आदि विशेषतायें हैं।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति: लोकगाथाओं की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। लेकिन कल्पना और

अनुमान के आधिक्य के कारण किसी एक मत को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता। मौखिक परम्परा में होने के कारण लोकगाथा का कोई सुसम्बद्ध इतिहास भी नहीं मिलता। यूरोप में लोकगाथाओं की उत्पत्ति के संबंध में मुख्य रूप से दो मत प्रचलित हैं। एक मत के लेखकों के अनुसार श्लोक को ही समस्त गाथाओं का रचयिता माना गया है। दूसरे मत के लेखकों की मान्यता है कि जिस कविता का रचयिता व्यक्ति-विशेष होता है। उसी प्रकार लोकगाथा भी व्यक्ति विशेष की ही रचना होती है। लेकिन वास्तविकता इन दोनों मतों के मध्य स्थिति प्रतीत होती है। वस्तुतः अपने मूल रूप में लोकगाथाओं का रचयिता व्यक्ति-विशेष होता है किन्तु मौखिक परम्परा में होने के कारण उनमें लोक द्वारा निरन्तर अमूल-चूल परिवर्तन होता रहता है। यह मान्यता लोकगाथाओं के विकासशील स्वभाव को सिद्ध करती है।

लोकगाथाओं की परंपरा अति प्राचीन है। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में लोकगाथाओं का यंत्र-तंत्र उल्लेख मिलता है। हमारे प्राचीनतम लिखित साहित्य वेद से पता चलता है कि विभिन्न संस्कारों के अवसर पर जो लोकगान होता था, वह गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध था। वैदिक युग में यज्ञ के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा थी। इनके गाने वालों की गाथिन कहा जाता था। पद्य या गीत के पर्याय के रूप में भी गाथाओं का उल्लेख मिलता है। वैदिक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में उपलब्ध होते हैं। इनमें अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त-चरित्र का संक्षिप्त वर्णन है। 12 ऐतरेय ब्राह्मण में ये गाथाएं कहीं श्लोक नाम से निर्दिष्ट हैं, तो कहीं यज्ञ-गाथाएं नाम से।

पुराणों में एक गाथाओं का वर्णन मिलता है। 13 सुवर्ण की गाथा तथा कटु एवं विनता की गाथा इसके प्रमाण हैं। पुराणों में गाथा के महत्व को व्यास ने स्वयं स्पष्ट किया है। 14 गाथा शब्द और पुराण शब्द का संबंध स्पष्ट करते हुए डॉ० सत्यप्रत सिन्हा ने लिखा है कि पुराण शब्द के अर्थ की ओर जाएं तो ज्ञात होगा कि प्राचीन आख्यान, उपाख्यानों एवं गाथाओं को एकत्र संकलन का नाम ही पुराण है। अतः पुराण शब्द का तात्पर्य सामान्यता प्राचीन काल की वस्तुओं अथवा कथाओं, गाथाओं से है। ऐतिहासिक गाथाओं की परम्परा महाभारतकाल में भी अक्षुण्ण दिखाई पड़ती है। व्यास की शतसाहस्री संहिता में दुष्यंत के यशस्वी पुत्र भरत के संबंध में अनेक गाथाएं उपलब्ध हैं। ये गाथाएं राजसूर्य यज्ञ के अवसर पर तो गाई ही जाती थीं लेकिन इसके साथ ही विवाहदि शुभ महोत्सवों पर भी इनके गाने का विधान मैत्रायिणी त्रसंहिता में उपलब्ध होता है। 16 पारस्कर गृहसूत्र में भी विवाह संबंधी दो गाथाएं आई हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र में सीमन्तोन्नयन के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा का संकेत प्राप्त होता है।

लोकगाथाओं की परिभाषाएं

लोकगाथा शब्द हिन्दी अंग्रेजी के बैलेड के पर्याय के रूप में ग्रहण किया गया है बैलेड शब्द लैटिन भाषा के बेलारे शब्द से निकला है। बेलारे का अर्थ है नृत्य करना। संभव है कि प्रारंभ में नृत्य के सहयोग से गाये जाने वाले गीत को बैलेड कहा जाता है, लेकिन इस समय अर्थात्मक गीतों को ही बैलेड कहा जाता है। लोकगाथा की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूपों में दी है। जिनमें लोकगाथा के सामान्य तत्व मिल जाते हैं। लोकगाथा शब्द को एक अंग्रेज लेखक ने इस तरह से स्पष्ट किया है, बैलेड वह कथात्मक गेय काव्य है जो या तो लोक-कंठ में विकसित होता है या लोकगाथा के सामान्य रूप विधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है। जिसमें गीतात्मकता और कथात्मकता दोनों होती हैं। इनका प्रचार जन-साधारण में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता है। इस मान्यता के अनुसार उस कथात्मक गीत को लोकगाथा माना गया है जो अपने मूल रूप में किसी कवि-विशेष द्वारा रचा जाता है,

किन्तु मौखिक परम्परा में होने के कारण उसका निरन्तर विकास होता रहता है और समयानुसार उसमें अन्य लोकजनों की वाणी का भी समावेश हो जाता है।

फेंक सिजविक ने लोक गाथा की संक्षिप्त परिभाषा इस तरह से दी है लोकगाथा वह सरल वर्णनात्मक गीत है जो लोक मात्र की सम्पत्ति होती है और जिसका प्रकार मौखिक रूप से होता है। सिजविक ने वर्णनात्मकता, कथात्मकता, मौखिकता एवं सरलता की लोक गाथा के मुख्य तत्त्व के रूप में माना है। लोकगाथा साधारण जनो द्वारा रचित होती है, जिसका मुख्य उद्देश्य उन्हीं की भावनाओं को अभिव्यक्त करना होता है। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार श्लोक गाथा ऐसी पद्यात्मक रचना है जिसका रचयिता अज्ञात हो, जिसमें साधारण उपाख्यान का वर्णन हो और जो सरल, मौखिक परंपरा के लिए उपयुक्त तथा ललित कला की सूक्ष्मताओं से रहित हो। हिन्दी विश्वकोश में लोकगाथा के विषय में कहा गया है, श्लोकगाथाओं में गीतात्मकता अनिवार्य तत्त्व है। इनका कथानक विस्तृत एवं प्रभावशाली होता है। रचना व्यक्तित्व विहीन रहती है। अर्थात् रचयिता अज्ञात ही रहता है। ये समाज के किसी व्यक्ति विशेष से सम्बद्ध नहीं रहती अपितु सम्पूर्ण समाज की धरोहर होती है। इतना विकास जनसाधारण की मौखिक परम्परा में होता है। काव्यकला के सौन्दर्य गुणों का इनमें अभाव रहता है। उपर्युक्त विदेशी एवं स्वदेशी विद्वानों की विभिन्न परिभाषाओं की विवेचन एवं विश्लेषण के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि लोकगाथा गेयता, कथात्मकता से युक्त एक ऐसी रचना है, जो मौखिक परंपरा में पीढ़ी दर पीढ़ी यात्रा करते हुए निरन्तर विकसित होती है।

लोक-गाथाओं की विशेषताएं:- लोकगाथा के स्वरूप एवं उसकी परिभाषा पर विचार करने के पश्चात् हमारे सामने उसकी विशेषताएं स्पष्ट हो जाती हैं। लोकगाथाओं की इन विशेषताओं के क्रमबद्ध परिचय से ही लोकगाथा का वास्तविक महत्व उद्घाटित होगा :-

1. कथात्मकता
2. गेयता, संगीत तथा नृत्य का संयोग।
3. रचयिता ने नाम एवं व्यक्तित्व का अभाव।
4. मौखिक परंपरा और विकसनशीलता।
5. स्थानीयता
6. उपदेशवृत्ति का अभाव
7. सरलता और स्वाभाविकता

मनुष्य का व्यापार-क्षेत्र बहुत विशाल होता है और इसलिए अपने छोटे से जीवन में वह बहुत कुछ देख-सुन लेता है और सीख भी लेता है। इन्हीं अनुभवों और निरीक्षणों का निचोड़ होती है यह लोकोक्तियां और कहावते। यद्यपि यह निकलती किसी एक मुख से है किन्तु इनका कथ्य लोक का ही अनुभव होता है। लोकोक्तियों में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। इनमें व्याख्या करने की प्रवृत्ति नहीं होती, इसीलिए यह सूत्र रूप में होती है। इनमें कथातत्व नहीं होता, किन्तु जीवन सत्य बड़ी सहजता से प्रकट होता है। साहित्य का यह ऐसा अंग है, जिसमें कल्पना का आश्रय नहीं लिया जाता है। सच्चाई ही इनकी आधारशिला होती है। किताबों को आखों से देखने वाले निरे बुद्धिविलासी व्यक्ति कहावतों के निर्माता नहीं थे। कहावतों के रचयिता जीवन के दृष्टा थे। यद्यपि ये कथानक, संगीत गीत या लय से शून्य होती है, फिर भी इनमें किसी प्रकार की शुष्कता नहीं होती। साहित्यिक सरसता, सजीवता के साथ ही इनमें गतिशीलता भी होती है।

लोक – नाट्य

लोक नृत्य के अतिरिक्त लोक-नाट्य भी एक महत्वपूर्ण लोक कला है। चूंकि लोक – नाट्य के संवाद प्रायः गीतों से ही होता

है। और वाद्य संगीत समूह नृत्य आदि इसकी विशेषतायें हैं। इसका उद्देश्य वही लोक गीतों सन्दर्भ में कर देना अप्रासंगिक न होगा। परिष्कृत रुचि के लिये आज जिन साहित्यिक नाटकों का सृजन होता है उनकी आधारभूमि लोकनाट्य भी है। हिन्दी नाटक की परम्परा का मूल स्रोत यह जन नाटक ही है जो स्वांग आदि नाम से अपने प्राचीन रूप में अब तक विद्यमान है। क्रमशः इन जन नाटकों की एक शाखा ने विकसित होकर साहित्यिक रूप धारण किया। हिन्दी ही क्यों, सम्पूर्ण भारतीय नाटकों के विकास का बीज लोक-नाटकों में निहित है। लोकनाटक खेलने के लिए किसी प्रकार के व्यवस्थित रंगमंच की आवश्यकता नहीं हुआ करती। कहीं भी खुले स्थान पर एक सभा मंडप निर्मित कर लिया जाता है। कम्बल, दरी या चटाई बिछा दी जाती है। जिस पर दर्शक गण बैठ जाते हैं। सभा के मध्य में एक रंगभूमि बना ली जाती है। दृश्य परिवर्तन की सूचना पात्रों द्वारा दी जाती है। एक ही व्यक्ति पुरुष और स्त्री दोनों की भूमिका निभा लेता है। ढोल और करताल की ध्वनि नाटकारम्भ से काफी पहले ही होने लगती है। प्रधानतः नृत्य गीति औ वाद्य के द्वारा ही नाटक खेला जाता है। वार्तालाप रोना, हँसना, आदि संपूर्ण क्रियाकलाप, गेय पदों द्वारा प्रदर्शित होता है। उत्तर भारत में रास, नौटकी, रामलीला आदि प्रचलित लोक-नाट्य बहुत प्राचीन समय से चले आ रहे हैं। दक्षिण भारत की कथाकली पर भी कृष्णलीला का ही प्रभाव है। महाराष्ट्र में 'ललित' 'गोधल' 'तमाशा' आदि गुजरात में भवाई बंगाल में जात्रा राजस्थान में कठपुतली सयाल खालवा में गोच छत्तीसगढ़ में रामलीला गम्मत आदि प्रचलित हैं। पर हर प्रकार के लोकनाट्य की विशेषताएँ इस प्रकार रख सकते हैं

1. लोक – नाट्यों का कथानक प्रायः पुराण या इतिहास से लिया जाता है। किन्तु उसका स्वरूप नहीं होता। उसमें कल्पना का समावेश अधिक होता है।
2. कथानक में गति होती है।
3. लोक नाट्य का रंगमंच आडम्बरहीन होता है। परदों का उपयोग बहुत कम होता है। रंगमंच किसी भी खुले मैदान में बन जाता है। उसके लिए नाट्यशालाओं की आवश्यकता नहीं होती।
4. लोक नाटकों में अभिनय समूहगत होता है।
5. पात्रों में स्थानीय वैशिष्ट्य होता है।
6. संवाद पद्यमय अधिक और गद्यमय कम होता है।
7. नृत्य, वाद्य एवम् गीत लोक नाट्य में अवश्य ही होते हैं।

जौनसार-बावर के उत्तर में हिमाचल प्रदेश तथा दक्षिण में उत्तर प्रदेश स्थित है तथा पूर्व में गढ़वाल क्षेत्र स्थित है। इसलिए जौनसार-बावर का साहित्य भी हिमाचल प्रदेश एवं गढ़वाली साहित्य की तरह अपनी एक अलग पहचान रखता है। जौनसारी लोक साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का बड़ा ही सुन्दर सामंजस्य उपलब्ध है। जौनसारी लोक साहित्य भी हिन्दी के अन्तर्गत आने वाले लोक साहित्य हिमाचली, गढ़वाली, अहिराणी, बुन्देली, अवधी के समान ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसलिए जौनसारी लोक साहित्य को जन जीवन का दर्पण कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। जौनसारी लोक साहित्य जनता के हृदय के उद्गार हैं। सर्वसाधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं, वह ही उसका साहित्य बन जाता है। जौनसारी ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं, त्यौहारों, पर्यो मेलों के अवसर पर गीत गा-गा कर अपना मनोरंजन करती है। कहानियाँ सुनाना उनके मन को बहलाने का अन्य साधन है। समय-समय पर चुभते हुए अनाउणें लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रयोग करके जौनसारी जन अपने हृदयगत विचारों का उद्घाटन

करते हैं तथा भुजाउणिया (पहेलिया) तो जौनसार-बावर के जीवन का एक आवश्यक अंग है।

जौनसारी लोक साहित्य में निम्नलिखित छः विधाएँ दृष्टिगोचर होती हैं:-

लोक गीत:

जौनसारी लोकगीत जनमत द्वारा विशेष परिस्थिति वश स्थल कर्म, संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की सामूहिक अभिव्यक्ति हैं, जौनसारी लोक साहित्य में लोक गीत ही दिनचर्या की वास्तविक भावनाओं का आलेख प्रस्तुत करता है। इस प्रकार जौनसारी लोकगीतों में लोक संस्कृति का सजीव चित्रण दृष्टिगोचर होता है। जौनसारी लोक साहित्य में जौनसार-बावर के लोक गीतों का अत्यन्त महत्व है, इसमें जौनसार-बावर के जीवन के सभी पहलुओं एवं भिन्न-भिन्न परिवेश में मानव के भावनिक एवं शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण लोकगीतों में सर्वथा दृष्टिगोचर होता है। जौनसारी लोकगीतों में सामूहिक चेतना तथा समयिक क्रान्तियों का दर्शन भी स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रकार लोकगीतों में मांसलता की धारा प्रवाहित हुई है।

लोकगीतों का बीज हमारे सबसे प्राचीन तथा पवित्र ग्रन्थ ऋग्वेद में पाया जाता है। प्राचीन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर उपलब्ध होता है, वे ही लोक जीवन में लोकगीतों के पूर्व प्रतिनिधि हैं। पद्य या गीत के अर्थ में गाथा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। जौनसारी लोक गीतों में जहाँ भाई-बहन, माता-पिता पति-पत्नी, माता-पुत्री के आदर्श चरित्र का चित्रण किया जाता है, तथा श्रृंगार एवं वीर रस से युक्त लोकगीत सम्पूर्ण विश्व को प्रेम एवं साधना की प्रेरणा देते हैं।

जौनसारी लोक साहित्य में लोकगीतों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जनजीवन अपनी प्रचुरता एवं व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वभाविक है। इसलिए ये लोकगीत विभिन्न उत्सवों, ऋतुओं में गाये जाते हैं। जौनसारी गीतों का विभाजन निम्नवत् है:-

जौनसारी लोक गीतों का वर्गीकरण

- गीत धार्मिक देवी
- देवताओं के गीत
- रसानुभूति के गीत
- ऋतुओं एवं उत्सवों, मेलों से सम्बन्धित गीत
- गोडावणा सम्बन्धी
- श्रमगीत
- मांगलगीत
- पौराणिक गीत
- ऐतिहासिक गीत

लोक कथाएँ: जौनसार लोक साहित्य में लोक कथाओं का अपना एक विशिष्ट स्थान है। ये अपनी सरसता एवं लोकप्रियता के कारण अपनी एक अलग पहचान बनाये रखती हैं। बूढ़े-बुजुर्ग एवं बड़े सदस्यों एवं माताएँ अपने बच्चों को अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाकर उन्हें आनन्द प्रदान करती हैं, जिससे उनकी कल्पना एवं स्मरण शक्ति का विकास होता है और प्रातःकाल ही बच्चे पुनः अपने माता से कहानी सुनने का आग्रह करते हैं तथा उसे सुने बिना भोजन तक ग्रहण नहीं करते हैं। कल्पनाओं के आधार पर रचित कहानियों में रोचकता बनी रहती है। इन कहानियों को यदि लिखा जाए तो पठनीयता का गुण समाहित हो सकता है, क्योंकि ये कहानियाँ यहाँ के जनजीवन के पहलुओं पर आधारित हैं। लोककथा शब्द अंग्रेजी के फोक टेल शब्द का ही पर्यायवाची है तथा हिन्दी अनुवाद है। जौनसारी लोक कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कल्पनाओं का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है।

लोक कथाओं की परम्पराओं को मूल स्रोत विद्वानों ने वेदों में देखा है। यह पूर्णतः सत्य है कि लोक कथाओं का प्राचीन रूप हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में भी उर्वशी की कथा को प्राचीन कड़ी के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। उपनिषद् काल के बाद रामायण महाभारत काल के आख्यान से कथा की परम्परा प्राप्त होती है।

लोक कथाओं की परिभाषा: मनुष्य के जन्म के साथ ही लोक कथाओं का उदय हुआ है। लोगों में कहानी कहने की पुरानी परम्परा अपने अनुभूतियों को मनुष्य ने कथा के रूप में ही अभिव्यक्ति दी है। लोक में जीवन के सुख-दुःख, रीति-रिवाज अवस्थाएँ विश्वास, परम्पराएँ अभिव्यक्त होती हैं आदिकाल से लोक कथाओं का गठबन्धन मनुष्य की चेतना से चला आ रहा है। लोक कथाएँ अधिकांश मौखिक रूप में ही प्राप्त होती हैं। हिन्दी साहित्य कोश भाग एक में लोक कथा के सन्दर्भ में लिखा है—लोक प्रचलित और परम्पराओं से चली आ रही मूलतः मौखिक रूप में प्रचलित कहानियों ही लोक कथा कहलाती हैं।

1. एक रूपता का दर्शन होता है।
2. इनमें काल्पनिकता का भाव स्पष्ट दिखायी देता है।
3. इसमें यथार्थता तथा रोचकता के गुण सर्वत्र परिलक्षित होते हैं।
4. इसमें मौलिकता का अभाव होता है।
5. इसमें वाचक द्वारा लोक कथाओं में परिवर्तन होता रहता है।
6. यह पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है।
7. इसमें जीवन दर्शन के सूत्र निहित हैं।

लोक कथाओं का वर्गीकरण:

बार मासू की कथा पशु-पक्षियों की कथा
रक्षसों की कथा
परियों की कथा
बीर बहादुरों की कथा
हास्य कथा

राजा एवं राजकुमार उपादेशात्मक कथा राजकुमारियों की कथा
ऐतिहासिक प्रसंगों की कथा

लोक गाथाएँ: जौनसारी लोक गाथाओं का जौनसारी साहित्य में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। जौनसारी लोक गाथाओं को यहां के जन बोली में 'हारूल' कहा जाता है। इस प्रकार लोक गाथाएँ मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित हैं :-

1. टणकिया हारूल ।
2. सेवई हारूल ।
3. तान्दा हारूल ।

इसलिए जौनसारी लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक कथाओं की अनेक विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन विशेषताओं पर ध्यानाकर्षित करने से पता चलता है कि यह गीत (हारूल) लोकगाथा है। अलंकृत काव्य नहीं।

लोक गाथाओं की इन विशिष्टताओं को हम निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं:-

1. इसमें रचियता अज्ञात होता है।
2. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव।
3. स्थानीयता का प्रचुर पुट तथा क्षेत्र विशेष का प्रभाव है।
4. संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
5. ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित है तथा इसमें जिज्ञासा की भावना अधिक है।
6. यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक कथन करती है। अर्थात् ये मूलतः मौखिक हैं, लिखित नहीं।
7. अलंकृत शैली की अविद्यमानता एवं स्वाभाविक प्रभाव।

8. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का पुट सर्वत्र परिलक्षित होता है।
9. रचिता के व्यक्तित्व का अभाव।
10. लम्बा कथानक।
11. टेक पदों की पुनरावृत्ति।
12. यह लोकगीत और लोक कथाओं का समन्वय रूप है।
13. इनमें गीतात्मकता एवं नाट्यभिनेयता विद्यमान होती है।

जौनसार लोक गाथा के कथावस्तु की ही प्रधानता है। देश के अन्य प्रान्तों में भी विभिन्न प्रकार की लोकगाथाएँ मिलती हैं। उनमें वीर रस मुख्य है। यथा शमूल बाईर नथे राम, देवला रे फेरी। ऐजी आई गोई वे राजा साहिबा, हारूल रे तेरी। अनाउणें (मुहावरे—लोकोक्तियाँ) एवं भुजाउणियाँ (कहावते) जौनसारी लोक साहित्य में लोकगीत लोक कथाओं लोक गाथाओं के अलावा ऐसे भी मौखिक साहित्य प्राप्त होते हैं, जिसमें मुहावरे लोकोक्तियाँ (अनाउणें) एवं कहावतें (भुजाउणियाँ) जादू-टोने, छोड़े, बाजू, जंगू, भारत आदि जैसे अनेक प्रकार का स्फुट लोक साहित्य बिखरा पड़ा है। अनाउणें (मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ) तथा भुजाउणियाँ (कहावते) जौनसारी समाज में उसी प्रकार विशिष्ट स्थान रखती हैं। जिस प्रकार लोकगीत, लोक कथाएँ एवं लोक गाथाएँ अपना एक अलग महत्त्व रखती हैं। इनमें अनाउणें एवं भुजाउणियाँ का जौनसारी लोक साहित्य में स्थायी स्थान है। अनाउणें तो दैनिक जीवन में इतने व्याप्त हैं कि इनके लिए प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। ये अपने आप ही स्वयं स्फूर्ति सहजरूप से प्रकट होते हैं। जौनसार-बावर में ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में अनाउणें एवं भुजाउणियों का प्रयोग करती है। अनाउणों का प्रयोग अधिकांशतः बुजुर्ग एवं वृद्ध लोग अधिक करते हैं, लेकिन भुजाउणियाँ एक प्रकार से अनुभवों का खजाना होती हैं जो मानव के बुद्धि को तीक्ष्ण एवं तार्किक शक्ति को बढ़ाने में सहायता करती हैं। लोकोक्तियों को ज्ञान का सागर भी माना जा सकता है। वे जनसाधारण के सामान्य ज्ञान एवं सूक्ष्म निरीक्षण की परिचायिका भी हैं।

लोकगीत

लोकगीत जौनसार-बावर क्षेत्र के श्रमसाध्य लोक जीवन की बहुरंगी झलकियाँ पूर्ण समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। घर आंगन से लेकर खेत खलियानों तक जन्म से लेकर मृत्यु तक लोक जीवन के सभी आयामों का उद्घाटन इस शोध प्रबन्ध में हुआ है। प्रकृति की विषमताओं में घिरे इस जनजातीय क्षेत्र के वासियों को जीवन यापन के लिए लगातार कठिन परिश्रम करना पड़ता है, इस दुःसाध्य खेतिहार, दिनचर्या से जब भी थोड़ा समय मिलता है, उनके लिए मनोरंजनार्थ और हसी-खुशी के क्षण केवल लोक गीत ही प्रदान करते हैं, जिससे उनके जीवन में समा बंध जाता है, जनजातीय क्षेत्र के मेले और त्यौहार, नृत्य और पर्व भी मनोरंजन की इस अदम्य भावना की अभिव्यक्ति हैं। साथ ही ये अवसर श्रम साध्य जौनसारी जनजाति क्षेत्र के पहाड़ी लोक जीवन को सरस और रोमोचक बनाने में सर्वथा सिद्ध हुए हैं। इन उत्सवों, पर्वों एवं त्यौहारों, विवाह एवं खेतों में कार्य आदि कोई भी ऐसा अवसर नहीं है जिससे गीतों के बिना पूरा माना जा सके। लोकगीत इन सभी अवसरों के लिए अनिवार्य अभिव्यक्ति के साधन हैं।

वस्तुतः लोकगीतों की अनिवार्यता यहीं तक सीमित हो अपितु लोक गीतों ने जौनसार-बावर के जनजीवन के प्रत्येक पक्ष पर अपना प्रभाव डाला है। जौनसार-बावर के जनजातीय क्षेत्र में विवाह और जन्म के अवसर पर मंगल गीत गाये जाने की परम्परा आज भी दृष्टिगोचर होती है। यथा— भामणों को बेटा कुंगू लाअं पिठाई बाजगी को बेटा ले साई बजाअं बधाई। मृत्यु के अवसादपूर्ण अवसर पर शोकगीत गाने की प्रथा भी प्रचलित थी। बड़ी-बूढ़ी महिलाएँ रो-रो कर गीत गाकर विलाप करती थी,

तथा अलग-अलग साज-बाज के साथ विशेष प्रकार के शोक गीतों का भी प्रचलन यहां सर्वत्र परिलक्षित होता है, जिसे हाईलार कहते हैं। अब मातम बनाने के पुराने के रिवाज बदल गये हैं, लेकिन वर्तमान में यह परम्पराएं लगभग लगभग लुप्त प्राय होती जा रही है। जौनसारी-बावर के अधिकांश गांवों में वर्तमान में इस परम्परा की इतिश्री हो चुकी है। कुछ पट्टी (खतों) या गांवों में यह परम्परा अभी भी प्रचलित है।

अतः लोकगीत यहां के जीवन से अलग केवल भावाभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, अपितु स्वयं जीवन का एक अनिवार्य अंग है। लोकगीतों से अलग जौनसारी लोक जीवन के कल्पना ही सम्भव नहीं। वस्तुतः विषम और दुसाध्य प्राकृतिक परिस्थितियों में जीवन को गीतमय बनाने के लिए जितनी आवश्यकता यहां भोजन, पानी और हवा की है, उतनी ही आवश्यकता यहां मानसिक संतुलन के लिए लोकगीतों की है।

जौनसारी लोकगीत वस्तुतः लोकपरक है। इन गीतों में प्रयुक्त प्रतीक, उपमान, रूपक और बिम्ब विधान आदि और उनके द्वारा लोक भाषा में व्यंजित भाव लोक रुचि के अनुकूल ही अभिव्यक्त है। इन गीतों में लोक भावनाओं का सहज प्रतिपादन हुआ है। इसी कारण यहां का समाज इसे सहज ही स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार जौनसारी गीत किसी व्यक्ति विशेष की भावभिव्यक्ति न होकर सम्पूर्ण समाज के सामूहिक मनोभावों का उद्घोषक लोक गीत बन गये हैं। जौनसारी लोकगीतों में रचियता का व्यक्तित्व गौण ही रहता है, चाहे अज्ञात भले ही न हो। लोकगीतों के नित्यता और लोकप्रियता के गुणों का जौनसार लोकगीत अवश्य ही दृष्टिगोचर होते हैं। जौनसारी गीतों में किसी एक गुण का भी कमी दृष्टिगोचर नहीं होती है। यह गुण इसमें इसलिए सर्वथा परिलक्षित होते हैं, क्योंकि इसमें परिवर्तन और फेर बदल की सम्भावना सदैव विद्यमान रहती है, ताकि बदलती परिस्थितियों में भी वह अपनी सामयिकता कायम रख सके।

जौनसारी लोकगीतों में नित्यता और लोकप्रियता के लिए सुनम्यता का मूलभूत गुण देखने को मिलता है। इस गुण के कारण ही स्थानीय बोलियां इन गीतों के लोकप्रियता के प्रसार में बाधक नहीं हैं। जौनसार-बावर ने बोलीगत वैषम्य इतना है कि कुछ ही कि०मी० की दूरी पर बोली में अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, जिसके कारण यहां के लोकगीतों में निहित, सहज लयात्मक और भावात्मक गुणों के कारण अर्थहीनता भी दृष्टिगोचर होती है, जौनसारी लोकगीत उसी प्रकार लोकप्रचलित है।

जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों के गीत प्रचलित है। जौनसारी लोकगीत उसी प्रकार लोकप्रचलित है। जिस प्रकार अन्य क्षेत्रों के भीत प्रचलित है। जौनसार-बावर में दुखान्त और सुखान्त दोनों ही प्रकार के गीतों का प्रचलन है। जौनसार-बावर में दुखान्त और सुखान्त दोनों ही प्रकार के गीतों का प्रचलन है। जौनसार-बावर के गीतों में प्रेम-प्रसंग, घटनाओं एवं वहां अतीत के इतिहास ही गाथाओं एवं परम्पराओं पर आधारित अनेक प्रकार के सुन्दर गीतों से मन में एक कौतुहल सा उत्पन्न हो जाता है।

पौराणिक गाथाएं: जौनसार-बावर में देवताओं को नचाने की प्रथा आज भी सभी स्थानों पर देखने को मिलती है, किसी एक पर मासू देवता अवतरित होता है। तथा किसी पर सुकराड किसी पर कायलू और किसी पर काली अवतरित होती है। किसी पर मासू की ढोली यहाँ तक स्त्रियों पर आछरिया (परी या मात्रिया) अवतरित होती है, और वे खुले आम लोगों के बीच लोक-लाज को त्यागर नाचने लगती हैं। जौनसार-बावर में रात में जागरण कर कई दिनों तक देवता नचाने की प्रथा आज भी सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होती है। अलग-अलग गाँवों में अलग त्योंहारों एवं उत्सवों तथा पर्यो पर देवता नचाने की प्रथा है। क्योंकि जौनसार-बावर पांडवों की स्थली मानी जाती है, इसलिए यहां पर किसी पर भीम किसी पर अर्जुन, किसी पर सहदेव, किसी पर

नकुल आदि अवतरित होते हैं। महिलाओं में भी द्रोपदी, कुन्ती अवतरित होती है।

इन सभी के अवतरित होने के बाद इनकी एक प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये सभी एक अलग प्रकार की भाषा पर प्रयोग करते हैं, जो केवल उन्हीं की समझ में आती है, जिन पर अवतार आया हुआ होता है। इन लोगों की एक और विशेषता यह है कि ये लोग आग से भी खेलते हैं।

इसमें ढोल, धमाऊणी (डमरू डफली) रणसिंगा, करनाइयां शक आदि प्रमुख वाद्य यंत्र प्रयुक्त किये जाते हैं। जागर गीतों एवं वाद्य यंत्रों की ध्वनि संकेतों से देवताओं को नचाया जाता है, जिन व्यक्तियों पर देवता आते हैं, उन्हें औता: कहा जाता है देवता अवतरित होने पर व्यक्ति का सम्पूर्ण शरीर धीरे-धीरे कांपने लगता है, फिर उन्हें धी और गाय के दूध का धूप दिया जाता है, जिसमें चावल के दाने भी मिले हुए होते हैं। इनको शान्त करने के लिए पण्डित या मासू के माली एक मंत्र का उच्चारण करते हुए इनके माथे पर चावल का टीका लगाया जाता है, लेकिन हल्का सा कम्पन्न इनके शरीर पर यथावत ही रहता है। देवता नचाने के इस आयोजन को जौनसारी भाषा में मड़ाऊणा कहा जाता है, अधिक रात तक यह आयोजन होता है। इसलिए इसे जागरण भी कहा जाता है।

स्थानीय देवताओं की गाथाएं: जौनसार-बावर के कण-कण में मासू सिमाये हुए हैं, वहां के गांवों-गांवों में मासू की कई रूपों में पूजा-अर्चना होती है। हर गांव की अपनी गाथा इससे जुड़ी हुई है। वैसे तो जौनसार-बावर में मण्डाऊणों और जागड़े के अवसर पर कृष्ण एवं राम की शक्ति का गुणगान भी होता है, जिसमें दियाणों और उनकी महिलाओं जिन्हें देवता की परियां माना जाता है, कृष्ण और राम के भजन मासू के मन्दिर के परागण में गाये जाते हैं। यहां तक किसी-किसी गाँव में रामलीला एवं कृष्ण लीलाओं का आयोजन भी देखने को मिलता है। जौनसार-बावर में पांडवों से सम्बन्धित गाथाएं भी गांव-गांव में दृष्टिगोचर होती हैं। गांव-गांव में पांडवों को नचाने की प्रथा आज भी सर्वत्र परिलक्षित होती है। उनके सन्दर्भ में अनेक लोक गाथाएं यहां प्रचलित हैं –

छोटोड़ा रे, अरजूनड लाबोड़ा पालाड, कानदो चुगों धनुषो-बाणों हईडी के चाला ।।

जौनसार-बावर में अनेक तीर्थ स्थानों के नाम पाण्डवों पर आधारित है जिसमें लाखामण्डल, गौथान, विराटगढ़, चक्रानगर जहां पर पाण्डव एक ब्राह्मण परिवार के यहां ठहरे थे तथा बकासूर नामक राक्षस का वध किया था, गौराघाटी आदि इसके साक्षात् प्रमाण है। जौनसार-बावर में आज भी पांडव नृत्य खूब प्रसिद्ध है। महाभारत काल में यह क्षेत्र या देश पांचाल देश के नाम से विख्यात था, जो कालान्तर में जौनसार-बावर हो गया है, मासू देवता की गाथा का उदाहरण इस प्रकार है –

मोडे रे मोडाइया भई, खेली मोडाइ रे चारौ गाणे देवते चारोई बाई रे ।।

नन्तराम नेगी की वीरगाथा: नन्तराम नेगी का जन्म एक किसान परिवार में मलेथा गाँव में हुआ था। बचपन से ही नन्तराम में धार्मिक प्रवृत्ति कर्तव्यपरायणता व देश भक्ति गुणों से उसका व्यक्तित्व स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होता था। एक दिन वह अपने बड़े भाईयों क्रमशः अजब सिंह एवं सबल सिंह के साथ जंगल में शिकार खेलने के लिए गया हुआ था। उसकी वीरता एवं साहस को देखकर सिरमौर नरेश शमशेर प्रकाश ने उसे अपनी सेना में भर्ती कर लिया था, इस समय जौनसार-बावर सिरमौर रियासत

का ही एक अभिन्न अंग था। अपनी वीरता एवं शौर्यवान से वह सम्पूर्ण जौनसार-बावर एवं सेना में प्रसिद्ध था। एक बार 1781 ई० में मुगल सरदार अब्दुल कादिर रोहिला ने सिरमौर की ओर बढ़ ही रही थी कि सिरमौर के राजा को चिन्ता होने लगी, तब राजा ने अपने राज्य के विद्वानों को बुलाकर एक बैठक की तथा समस्या के समाधान का प्रश्न किया तभी एक विद्वान ने कहा महाराज इस समस्या का समाधान अब एक ही व्यक्ति कर सकता है जिसका नाम है नन्तराम नेगी।

नन्तराम नेगी अपनी वीरता एवं चतुराई के लिए सम्पूर्ण राज्य में विख्यात था। राजा ने उसी समय भूप सिंह और एक सैनिक को साथ में भेजकर (अर्थात् जिसे जौड़ी कहा जाता था) उनके हाथ एक पत्र लिखकर नन्तराम के पास भेजा। राजा का सन्देश प्राप्त होते ही नन्तराम शीघ्रता से नहान की ओर बढ़ चला। उसके पिता ने उसे बहुत रोका लेकिन देश के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा के भाव ने उसे रुकने की अनुमति नहीं दी अब वे शीघ्र ही सिरमौर को रवाना हुआ। भयभीत राजा पल-पल गिनकर नन्तराम के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसा कहा जाता है कि राजा एवं नन्तराम की भेंट बड़ी रोचक थी। जैसे ही उसकी भेंट राजा से हुई राजा ने सम्पूर्ण घटना को जानकारी नन्तराम को दी, लेकिन नन्तराम बिल्कुल भी विचलित नहीं हुआ। उसने निर्भीक होकर राजा से आज्ञा मांगी राजा ने उसे सेनापति नियुक्त करके शाही घोड़े एवं तलवार से सुसज्जित किया तथा कहा यदि मुगल सेनापति का सिर काट कर लाओगो तो कालसी की जागीर भेंट स्वरूप तुम्हें प्रदान करूंगा। नन्तराम ने भी बड़ी उत्सुकता एवं निर्भीकता से वचन दिया कि महाराज आप निश्चित रहिये।

तलवार की धार को निहारते हुए वह जाने को तैयार ही हुआ था कि राजा ने उसके सम्मुख एक कठिन शर्त रखी यदि मुगल सैनिक सरदार निन्द्रा की स्थिति में हो तो हत्या नहीं करना, क्योंकि ऐसा करना मुझे पाप लगता है। उत्साही नन्तराम एक बार तो अस्मजस्य में पड़ गया कहीं राजा मेरी परीक्षा तो नहीं ले रहा है, लेकिन मन ही मन अपने ईष्ट देवता मासू का स्मरण कर उसने राजा की शर्त मान ली। आमने-सामने की लड़ाई में मुगल सेना का सामना करना आसान कार्य नहीं था, इसलिए यह भूप सिंह एवं अन्य वीर सैनिकों को अपने साथ लेकर तलवार को हवा में लहराते हुए घोड़े पर सवार हो गया, लोकगाथा के अनुसार घोड़े की गति इतनी तीव्र थी कि उसकी टापों से गज-गज भर धूल उड़ रही थी। पावटा पहुंचने से पूर्व उसने रास्ते में कटासन मन्दिर में मां भवानी के दर्शन किए तथा गोपनीय ढंग से मुगल शिवर का निरीक्षण किया, तो आस-पास के क्षेत्र में मुगल सेना द्वारा किया गया अत्याचार को देखकर उसका क्रोध अत्यधिक बढ़ गया तथा रात के अन्धेरे में अपने सैनिकों को मुख्य रास्ते पर तैनात कर हमला बोल दिया। मुगल सैनिक को इस बात का संशय भी नहीं था कि सिरमौर रियासत कोई योद्धा शिविर में आ जायेगा।

मुगल सेनानायक को क्या पता था कि आज नन्तराम आज उसका काल बनकर आ रहा है। सैनिक अपनी मस्ती में चूर थे। नन्तराम सीधे अब्दुल कादिर के कक्ष में गया, लेकिन सरदार निन्द्रा की अवस्था में था। उसी समय नन्तराम को राजा की शर्त याद आई। अब सरदार का सम्पूर्ण शरीर कवच से ढका हुआ था। नन्तराम ने अपना मानसिक सन्तुलन भी नहीं खोया, उसने राजा का पत्र सेनापति को दे दिया, ज्योंहि मुगल सेनापति ने पत्र पढ़ने के लिए अपनी गर्दन झुकायी, उसी समय वीर नन्तराम ने अपनी तलवार के एक ही वार से सेनापति का सिर घड़ से अलग कर दिया और उस कटे हुए सिर को अपने थैले में रखकर तुरन्त अपने घोड़े पर बैठकर मुगल सैनिक पड़ाव से बाहर निकल आया। जब तक मुगलों को अपने सेनापति के वध का पता चला वीर नन्तराम मुगल सेना की पहुंच से बहुत दूर निकल गया था। अपने सेनापति के मारे जाने से मुगल सेना में भगदड़ मच गयी।

वे नाहन पर आक्रमण करने के बजाए वापिस चले गये और पूरे सिरमौर रियासत, जिसमें उस समय जौनसार-बावर भी सम्मिलित था। की मुगलों से रक्षा हो गई। रण बांकुरे नन्तराम की इस वीरता से प्रसन्न होकर नाहन के राजा ने नन्तराम का बहुत सम्मान किया। अनेक उपहारों के अतिरिक्त उसे (गुलदार, शेर) की उपाधि दी। आज भी इस क्षेत्र में उक्त मलेथा गांव को गुलदारों का मलेथा कहते हैं।

उपरोक्त कथानाक मुख्यतः नन्तराम की हारूल पर आधारित है। नन्तराम नेगी जौनसार-बावर के ऐसे योद्धा है, जिनकी शौर्य गाथा को अनेक गीत रूपों में निबद्ध कर यहां गया जाता है। विशेषकर नन्तराम नेगी की हारूल यहाँ दीपावली पर्व एवं विवाह आदि का मुख्य आकर्षण होती है। नन्तराम नेगी की वीरता आज भी युवा पीढ़ी का अपने शौर्य व वीरता के लिए प्रेरित करती रहती है। उदाहरण के लिए – मौड़ सूणा नन्तीराम बेगी ऐ बेगी, ऐसे कर कड़खे मलेतिया नेगी। एक मेरी जोड़िए ला खाओदी खाणां एइजी मेरी जोड़िए ले, मलेथे के जाणा टापने लाए नन्तराम घाटी रे घूम गज-गज माटी उड़ घोड़ी के रे सूम।।

महाराणा प्रताप के घोड़े की भांति नन्तराम नेगी का घोड़ा भी अद्वितीय था महाराणा प्रताप की तरह नेगी भी मुगलों से बदला लेने को व्याकुल था। उस वीर सैनानी के बलिदान के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण इस हारूल गीत में गाए जाते हैं।

जौनसारी लोक नाट्य या नृत्य: लोक नाट्य लोक एवं नाट्य का संयुक्त रूप है। लोक शब्द द्वारा जो जनसमूह हमारे सामने आते हैं, और उसकी कृति जब नाट्य रूप में कथोपकथन के माध्यम से किसी कथावस्तु को उपस्थिति करती है। तो उसे लोक नाट्य कहते हैं। लोक नाट्य की भाषा सीधी एवं सरल होने के कारण अनपढ़ लोग इसमें रात भर रस ले सकते हैं। लोकनाट्य भारत में भिन्न-भिन्न प्रदेशों भिन्न-भिन्न संज्ञा से सुसज्जित है। इस प्रकार सभी वर्गों के मनोरंजन के लिए ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर बढ़ा ने नाट्य वेद की सृष्टि की।

जग्राह पाठ्य ऋग्वेदान्त सामशयोगितमेव च। यजुर्वेदादभिनयान रसमथार्वणादपि।। जौनसारी जन जातीय क्षेत्र के लोक नाट्य की गति में क्रमशः सौम्यता एवं द्रुत गति है, इसलिए जौनसारी लोक नाट्य मन्द गति से काफी देर तक चलते रहते हैं। शादियों आदि में पूरी रात भर लोकगीत के साथ लोक नाट्य की परम्परा आज भी सर्वत्र परिलक्षित होती है। इन लोक नाट्य के संगीत एवं वाद्ययंत्रों का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए जौनसारी जन-जीवन में संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका है। संगीत यहां के भू-भौतिक परिस्थितियों एवं नैसर्गिक पर्यावरण के अनुरूप बहुरंगी धाराओं में प्रवाहित हुआ है, इसलिए इस जनजातीय एवं हिमाच्छादित खण्डों से पोषित असंख्य जल रश्मियों नादपूर्ण जल तो प्रपातों एवं वेगमय नदी का रूप ले लिया है। यहां का संगीत ताल प्रधान है वाद्ययंत्र जौनसारी नाट्य के प्राणस्वरूप है। वाद्य यंत्रों के माधुर्य को सुनने वाले के पैरों में सहज ही थिरकन पैदा हो जाती है। लोकनाट्य के रस में डूबकर मग्न होकर ये लोग नृत्य के आमोद-प्रमोद में खो जाते हैं। इन लोक नाट्य में प्रयुक्त होने वाले वाद्य यंत्रों में ढोल, धमारुणी लकड़ी के उड़े. करनाई, नगारे, रणसिंगा ढोलकी, खंजरी आदि का प्रयोग किया जाता है इन वाद्ययंत्रों को गीत की आवाज से मिलाकर लयात्मक धुन उत्पन्न की जाती है, जिसमें ताल की गति बनी रहती है तथा लम्बे अन्तराल तक चलने वाले नृत्य या नाटक में जब कभी लय को बदला जाता है तो वाद्ययंत्रों पर चोट कम करके उसके लय में परिवर्तन किया जाता है। नृत्य विलम्बित लय में आ जाता है, जिसमें नयी ताल आरम्भ हो जाती है। इसमें वाद्य कलाकर एवं नर्तक बदलते रहते हैं। किन्तु नाट्य व्यवधानमुक्त चलता रहता है, इसलिए नाट्य चिरगामी है।

जौनसारी लोक साहित्य की यह सबसे अन्त विधा है। इसलिए जौनसारी लोक कलाओं में नृत्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण यहाँ अनेक गीत भी इन्हीं के नाम से पहचाने जा सकते हैं। इसी कारण अधिकांश गीत ताल प्रधान हैं। इसकी धुने एवं लय से समस्त जौनसार-बावर का वातावरण ही नहीं कलामय हो जाता है, अपितु एक स्वप्न की अनुभूति भी प्रदान करता है। जौनसारी जनजातिय क्षेत्र में लोकनाटक गीत के बिना पूरा नहीं माना जा सकता है। इसलिए अधिकांश नाट्यगीत के साथ ही संपन्न किये जाते हैं। जौनसार-बावर में रासो गीतों के साथ रासो नाट्य भी परम्परागत हुए हैं। इस नाट्य को दो-चार या छः सात महिलाएं मिलकर दीपावली या विशेष पर्यो पर करती हैं। इसके अतिरिक्त नाट्य स्त्रियां एवं पुरुष अलग-अलग पंक्तियों में खड़े होकर करते हैं। इस प्रकार जौनसारी लोकगीतों में नाट्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. एकल नाट्य ।
2. युगल नाट्य ।
3. सामूहिक नाट्य ।

एकल नाट्य में उन नृत्यों को वर्गीकृत किया जा सकता है, जिनमें सामान्यतः एक ही नर्तक होता। अन्य कलाकार केवल ताल एवं स्वर प्रदान करते हैं। इस प्रकार घरे में बैठकर अन्य कलाकार बारी-बारी से अपने कला का प्रदर्शन करते हैं। युगल नृत्य में दो व्यक्ति तलवारे या लकड़ी लेकर वाद्य यंत्रों की लय एवं धुन के साथ अनेक दाव-पेचों का रोमांचक प्रदर्शन करते हैं। इसे स्थानीय बोली में जंगबाजी या युगल नाटी कहा जाता है। युगल नृत्य में थौरुला एवं सुराई भी सम्मिलित है। अतः इस नृत्य में वीर रस की भावना अधिकांशतः दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त श्रृंखला प्रदान गीतों में रतिभाव का लक्षण भी सर्वत्र परिलक्षित होता है।

सामूहिक नाट्य या नृत्यों का विस्तृत रूप से सर्वाधिक प्रचलन है। अधिकांशतः सभी अवसरों पर सामूहिक नृत्य का ही प्रदर्शन होता है। विवाह एवं पौड़ाइयों के अवसर पर एकल एवं युगल नृत्य के साथ सामूहिक नृत्यों का प्रचलन भी बहुत अधिक है। इन नाट्यों को हारूल, नाटी, घुटिया रासो, जाँता, धुमसू टणकिया तान्दा, आदि नामों से जाना जाता है। इसमें कुछ नृत्य केवल ऐसे हैं, जिसमें केवल महिलायें ही भाग लेती हैं, तथा कुछ नृत्य ऐसे भी हैं, जिसमें केवल पुरुष ही भाग लेते हैं। जैसे धुमसू छोड़े जंगबाजी सराई, हंदया आदि में केवल पुरुष ही भाग लेते हैं। हंदया नृत्य में केवल नर्तक एक रस्सी के सहारे देवदार या बिमल की लकड़ी की मसाल कमर में बांधकर नृत्य करता है। मौड़ावणा नृत्य की अपेक्षा नाट्य प्रधान है, इनमें नर्तक पोंडवों की भूमिकाओं का महाभारत के कथानक पर आधारित गीत पर अभिनय करते हैं। अधिकांशतः जौनसार-बावर में स्त्रियां एवं पुरुष अलग-अलग पंक्तियों में नृत्य करते हैं। इन लोक नाट्यों में हारूल, तान्दा गीत एवं झेला, धीई, आण्डे-काण्डे आदि प्रमुख हैं। एक महत्वपूर्ण नाट्य विधा जिसे वहाँ के साधारण बोली में बुढ़ियात कहा जाता है। यह नाट्य निम्न जाति के लोगों द्वारा किया जाता है। इसमें सूर एवं कबीर का रहस्यवाद सर्वत्र परिलक्षित होता है जौनसार-बावर जनजातीय क्षेत्र के सामूहिक नृत्यों की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें एक मुख्य होता है जिसके अनुसार पद संचालन किया जाता है। इस प्रकार लोक नाट्य को हम तीन प्रकार से पहचान सकते हैं—

1. सामान्य लोकनृत्य ।
2. सामयिक लोक नाट्य ।
3. अनुष्ठानिक लोक नाट्य ।

सामान्य लोक नाट्य किसी भी समय किसी भी स्थान पर प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सामान्य लोक नाट्य मेले, विवाह एवं त्यौहारों के कोई भी अवसरों पर उपयुक्त होते हैं। जौनसार-बावर में लोक नाट्य सदाबहार लोक नृत्य है। इसी प्रकार सामयिक लोक नृत्य जन्म एवं विवाह तथा शुभ अवसरों पर विशु आदि त्यौहारों में देखे जा सकते हैं। जौनसार-बावर में रासों जैता, हारुले एक लोक गीतों को अवसर पर देखे जाते हैं। इसी प्रकार अनुष्ठानिक लोकनृत्यों में जौनसार-बावर में देवता नचाने की प्रथा महत्वपूर्ण है। इसमें मनुष्य के मध्य भाग से देवता नाचता है। इस नृत्य को (द्रोणी) मड़ावणा, भी कहा जाता है। जौनसारी लोक नाट्य में जहाँ उनके लयात्मक गुणों एवं सौम्य स्वभाव के कारण सहज आकर्षण है, वहाँ उनके प्रयुक्त बहुरंगी वस्त्राभूषण एवं सज्जा परिधानों ने इनके बाड़ा कलेवर को अधिक कलात्मक एवं दैवीय बना दिया है। यहाँ पर प्रत्येक क्षेत्र में नृत्य के लिए अलग-अलग परिधान है। पुरुषों का पहनावा सामान्य सौम्य रहता है, जिसमें सूती एवं सादे वस्त्रों में जगेल, जुड़ा, पायजामा, कुर्ता चौड़ा, कोट सलुका, कमीज एवं सिर पर गोल या तिकोनी टोपी आदि हैं। नाट्य करते समय चौड़ा एवं जुड़ा पहनने की परंपरा आज भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। नारियों का पहनावा और सज्जा अलंकरण यहाँ पर सामान्य अवसरों पर भी काफी रोचक एवं आकर्षणयुक्त रहता है। उन्हें नृत्य के लिए विशेष सज्जा की आवश्यकता नहीं रहती है।

सन्दर्भ सूची

1. लोक साहित्य की भूमिका डॉ० बापूराव देसाई, पृष्ठ संख्या 17
2. एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेस जिल्द 5 पृष्ठ संख्या-288
3. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, जिल्द 8 पृष्ठ संख्या 518
4. लोक साहित्य का अध्ययन, जनपद त्रैमासिक अंक 1-पृष्ठ संख्या 6639
5. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ० बापूराव देसाई, पृष्ठ संख्या 2142
6. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास डॉ० दशरथ ओझा (प्रथम संस्करण) पृ० 4216 हिन्दी नाटक उद्भव व और विकास डॉ० दशरथ ओझा (प्रथम संस्करण) 9० 4349
7. लोक साहित्य विज्ञान के प्लोक गाथा के मूल तत्त्व विशेषता अभिप्रायः डॉ० सावित्री श्रीराम अध्याय से पृष्ठ 2675
8. छत्तीस गढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन— डॉ० शुक्लता वर्मा, पृष्ठ संख्या 10953
9. इन्द्र मिथं गाथिनों बृहत् ऋग्वेद 171
10. डब्ल्यू०पी० कार०फोरम एंडस्टाइल ऑफ पोइट्री के आधार पर लोक साहित्यः लोक साहित्य की भूमिका, कृष्णदेव उपाध्याय पृ०सं० 14758
11. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन—डॉ० शुक्लता वर्मा, पृष्ठ संख्या— 113
12. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन— डॉ० शुक्लता वर्मा, पृष्ठ संख्या 114
13. कुमाऊँ का लोक साहित्य डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा
14. कुमाँऊनी लोककथाएँ रमेश मटियानी शैलेश
15. कुमाँऊनी भाषा और उसका साहित्य डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय (1977)

16. गढ़वाल का इतिहास श्री हरिकृष्ण रतूड़ी (1920) – गढ़वाल प्रेस, देहरादून।
17. छत्तीसगढ़ी लोक जीवन और लोक साहित्य का अध्ययन-डॉ० शकुन्तला वर्मा – (1971), रचना प्रकाशन 45-ए खुल्दाबाद इलाहाबाद –। जौनसार-बावर का संक्षिप्त परिचय – के.आर. जोशी जौनसार-बावर दर्शन – डी०आई०जी० जयपाल सिंह राणा, विशन सिंह, महेन्द्रपाल सिंह 23-ए, कनाट प्लेस देहरादून। (2000)
18. जौनसार-बावर की लोक कथाएँ डॉ० सतीश (1959) आत्माराम एंड संस्कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
19. हिमालय परिचय – गढ़वाल राहुल सांकृत्यायन (1957) लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद।
20. जिज्ञासा पत्रिका (डी०ए०वी०कॉलेज देहरादून) सन् 2001